श्रीजयभगवान जैन
एडवोकेट

वेदोत्तरकाल में ब्रह्मविद्या की पुनर्जागृति

जन्मेजय की मृत्यु के बाद जब उत्तर के नागवंशी क्षत्रियों के आये दिन के हमलों ने कुरुक्षेत्र के कौरवों की राष्ट्रीय सत्ता को छिन्न-भिन्न कर दिया और सप्तसिन्धु देश तथा मध्यदेश में पुनः भारत के नागराज घरानों ने अपनी-अपनी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता को प्राप्त किया तो कौरव वंश की संरक्षकता के अभाव में वैदिक संस्कृति को बहुत धक्का पहुँचा. गान्धार से लेकर विदेह तक समस्त उत्तर भारत में पहले के समान पुनः श्रमणसंस्कृति का उभार हो गया. इसी ऐतिहासिक स्थिति की ओर संकेत करते हुए हिन्दू पुराणकारों ने लिखा है कि भारत का प्राचीन धर्म, जो सतयुग से जारी रहता चला आया है, तप और योगसाधना है. त्रेतायुग में सबसे पहले यज्ञों का विधान हुआ, द्वापर में इनका ह्रास होना शुरु हो गया और कलियुग में यज्ञ का नाम भी शेष न रहेगा.[1] मनुस्मृतिकार ने भी लिखा है कि सतयुग का मानवधर्म तप है, त्रेता का ज्ञान है, द्वापर का यज्ञ है, कलियुग का दान है.[2] इस सम्बन्ध में यह बात याद रखने योग्य है कि हिन्दू पुराणरचयिताओं तथा ज्योतिष ग्रन्थकारों की मान्यता के अनुसार कलियुग का आरम्भ महाराज युधिष्ठिर के राज्यारोहण-दिवस से गिना जाता है.[3] इस राज्यारोहण का समय लगभग १५०० ई० पूर्व माना जाता है.[4]

इस तरह जन्मेजय के बाद राष्ट्रीय संरक्षण उठ जाने के कारण और सांस्कृतिक वैमनस्यों से ऊब कर जब वैदिक ऋषियों का ध्यान भारत की आध्यात्मिक संस्कृति की ओर गया, तो वे उसके उच्च आदर्श, गम्भीर विचार, संयमी जीवन और त्याग-तप-साधना से ऐसे आनन्द-विभोर हुए कि उनमें आत्मज्ञान के लिये एक अदम्य जिज्ञासा की लहर जाग उठी.[5] अब उन्हें जीवन और मृत्यु की समस्यायें विकल करने लगीं. अब उनके मानसिक व्योम में प्रश्न उठने लगे—ब्रह्म अर्थात् जीवात्मा क्या वस्तु है ? इसका क्या कारण है ? यह जन्म के समय कहां से आता है ? यह मृत्यु के समय कहां चला जाता है ? कौन इसका आधार है ? कौन इसकी प्रतिष्ठा है ? यह किस के सहारे जीता है ? किस के सहारे बढ़ता है ? कौन इसका अधिष्ठाता है ? कौन इसे सुख दुख रूप बर्ताता है ? कौन इसे मारता और जिलाता है.[6]

अब ऋक्, यजुः, साम, अथर्व वैदिक संहितायें और शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष सम्बन्धी षट्क

१. महाभारत शान्ति पर्व अ० ३३५.
२. तपः परं कृतयगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते,
द्वापरे यज्ञमेवाहुः दानमेकं कलौ युगे । मनुस्मृति—१-८६.
३. महाभारत आदि पर्व २. १३ । महाभारत वन पर्व १४६-३८.
आर्य भटीयम् प्रथम पाद श्लोक ३—(इस ग्रन्थ का रचियता वृद्ध आर्य भट ईसा की पांचवीं सदी का महान् ज्योतिषज्ञ हैं).
४. श्रीजयचन्द्र विद्यालंकार—"भारत के इतिहास की रूपरेखा"—जिल्द १ १९६३, पृष्ठ २६१-२६३.
५. अथातो ब्रह्मजिज्ञासा—ब्रह्मसूत्र १. १. १.
६. किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाताः जीवाम केन च संप्रतिष्ठाः,
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम् ।।—श्वेताश्वतर उप० १. १.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्याएँ, जिन्हें वे अमूल्य निधि जानकर परम्परा से पढ़ते और पढ़ाते चले आये थे, उनको अपरा अर्थात् साधारण, लौकिक विद्याएँ भासने लगीं.[1] अब धन और सुवर्ण, गाय और घोड़े, पुत्र और पौत्र, खेत और जमीन, राज्य व अन्य लौकिक सम्पदायें, जिनकी प्राप्ति, रक्षा तथा वृद्धि के लिये वे निरन्तर इन्द्र और अग्नि से प्रार्थनायें किया करते थे, उनकी दृष्टि में सब हेय तुच्छ और सारहीन वस्तुएँ दिखाई देने लगीं. अब उनके लिये आत्मविद्या ही परम विद्या बन गयी. आत्मा ही देखने जानने और मनन करने योग्य परम सत्य हो गया.[2]

अब उन्हें भासने लगा कि जो आत्मा से भिन्न सूर्य, इन्द्र, वायु अग्नि आदि देवों की उपासना करते हैं वे देवों के दास हैं, वे लद्दू पशुओं के समान देवों के भार को उठाने वाले वाहन हैं. परन्तु जो आत्मा की अद्भुत विश्वव्यापी शक्तियों को जानकर आत्मा के उपासक हैं वे सर्वभू (सर्वान्तर्यामी), परिभू (विश्वव्यापी) स्वयम्भू (स्वतन्त्र) बन जाते हैं,[3] वे आत्मज्ञानी ही संसारपूजनीय हैं.[4] यज्ञ याग आदि श्रौत कर्म संसारबन्धन का कारण है और ज्ञान मुक्ति का कारण. कर्म करने से जीव बार-बार जन्म मरण के चक्कर में पड़ता है. परन्तु ज्ञान के प्रभाव से वह संसार-सागर से उभर अक्षय परमात्मपद को पा लेता है. नासमझ आदमी ही इन कर्मों की प्रशंसा करते हैं, इससे उन्हें बार-बार शरीर धारण करना पड़ता है.[5] जो ज्ञान को त्याग कर वेदोक्त यज्ञ यजन कर्म करने वाले हैं, अथवा ऐहिक आकांक्षाओं से प्रेरित दान आदि पुण्य कर्म करने वाले हैं, वे सब पितृयान मार्ग के पथिक हैं, वे धूम, कृष्ण पक्ष, दक्षिणायन पथ से पितृलोक, चन्द्रलोक, स्वर्ग को जाते हैं, पुण्य-अवधि क्षीण होने पर पुनः इसी मर्त्य-लोक में आकर जन्म धारण करते हैं. ज्ञानी जन द्वारा ये कर्म अपनाने योग्य नहीं हैं.[6]

व्रात्यों के प्रति आदर—इस जिज्ञासा के फलस्वरूप उनका व्रात्यों और यतियों के प्रति आदर और सहिष्णुता का व्यवहार बढ़ने लगा. ब्राह्मण ऋषियों ने गृहस्थ लोगों के लिये यह नियम कर दिया कि जब कभी व्रात्य (व्रतधारी साधु) अथवा श्रमणजन घूमते-फिरते हुए आहार-पान के लिये उनके घर आवें तो उनके साथ अत्यन्त विनय का व्यवहार किया जावे, यहां तक कि यदि उनके आने के समय गृहपति अग्निहोत्र में व्यस्त हो तो गृहपति को अग्निहोत्र का उपक्रम छोड़ कर उनका आतिथ्य सत्कार करना अधिक फलदायक है.[7]

ब्रह्मविद्या की खोज—ज्ञान की इस अदम्य प्यास से व्याकुल हो अनेक प्रसिद्ध ऋषिकुलों के पूर्ण शिक्षा प्राप्त नवयुवक घर-बार छोड़ ब्रह्मविद्या की खोज में निकल गये. वे दूर-दूर की यात्रायें करते हुए, जंगलों की खाक छानते हुए, गान्धार से विदेह तक, पांचाल से यमदेश तक, विभिन्न देशों में विचरते हुए, ब्रह्मविद्या के पुराने जानकार क्षत्रिय घरानों में पहुंचने लगे. वे वहां शिष्य भाव से ठहर कर इन्द्रियसंयम, ब्रह्मचर्य, तप, त्याग और स्वाध्याय का जीवन बिताने लगे.

इनकी इस अपूर्व जिज्ञासा, महान् उद्यम और रहस्यमय संवादों के आख्यान भारतीय वाङ्मय के जिन ग्रंथों में सुरक्षित हैं वे उपनिषत् संज्ञा से प्रसिद्ध हैं. यों तो ये उपनिषत् संख्या में २०८ से भी अधिक हैं परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से ११ मुख्य

---

१. तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति. अथ परा यथा तदक्षरमधिगम्यते.
—मुण्डक उपनिषद् १ पृ० ५.

२. आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः । (याज्ञवल्क्य द्वारा दिया हुआ उपदेश) बृहदारण्यक उपनिषद् २, ४, ५.

३. बृहदारण्यक उपनिषत्–१, ४. ६, १०.

४. तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद् भूतिकामः । —मुण्डक उप० ३-१-१०.

५. मुण्डक उपनिषत् १, २, ७।१, २, १० महाभारत शान्ति पर्व अ० २४१, १. १०.

६. (क) यास्काचार्य प्रणीत निरुक्त, परिशिष्ट २, ८, ६.
   (ख) छांदोग्य उपनिषद् निरुक्त ५, १०, ३-७.
   (ग) प्रश्न उप० १-६.
   (घ) भगवद्गीता १-६, २०, २१.

७. अथर्ववेद—काण्ड १५-सूक्त १ (११), १ (१२), १ (१३).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपनिषत्— ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक और श्वेताश्वतर अधिक प्रामाणिक हैं. चूंकि इन उपनिषदों में महाभारत काल से लेकर बुद्ध, महावीरकाल तक की वैदिक और श्रमण दो मौलिक संस्कृतियों के सम्मेलन की कथा अंकित है.[1] चूंकि इनमें जिज्ञासु ऋषियों की सरल विचारणा, सत्यपरायणता और तत्कालीन आध्यात्मिक शिक्षा-दीक्षा के जीते-जागते चित्र दिये गए हैं, चूंकि इन में आर्य ऋषियों के तत्त्वज्ञान का अंतिम निष्कर्ष दिया हुआ है जो वेदान्तदर्शन के नाम से प्रसिद्ध है, चूंकि ये आधुनिक हिन्दू दर्शनशास्त्र के मूलाधार हैं, इन्हीं का दोहन करके २०० बी० सी० के लगभग शुंग काल में गीता का विकास हुआ है, इन्हीं का दोहन करके २०० बी० सी० के लगभग बादरायण ऋषि के नाम से ब्रह्मसूत्र की रचना की गई है, इसलिये इनका भारतीय साहित्य में एक अमूल्य स्थान है. बुद्ध और महावीर से पहले की भारतीय संस्कृति की जांच करने के लिये इनका अध्ययन बहुत ही आवश्यक है. उस जमाने की शिक्षापद्धति के अनुसार इन उपनिषदों की कथनशैली आलंकारिक है. तत्त्व-बोध के लिये नित्य अनुभव में आनेवाली प्राकृतिक वस्तुओं को प्रतीक रूप में (Symbols) प्रयुक्त किया गया है. जगह-जगह याज्ञिक परिभाषाओं को भी काम में लाया गया है· आध्यात्मिक आख्यानों को रूपकों की (Parables) शक्ल में पेश किया गया है. इस कारण पिछले आचार्यों को इन्हें अपने-अपने साम्प्रदायिक साँचे में ढालने के लिये इनकी व्याख्या करने में खींचातानी करने की बहुत सुविधा मिल गई है. इस खींचातानी के कारण ही दार्शनिक युग में ब्राह्मण आचार्यों ने कितने ही नये वेदान्त दर्शनों को जन्म दिया है. कुछ भी हो, यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि उस जमाने के ऋषियों की कथनशैली दार्शनिक और वैज्ञानिक ढंग की न थी.

उस समय ब्रह्मज्ञान के प्रसार में पिप्पलाद, नारायण, श्वेतकेतु, भृगु, वामदेव, अंगिरस याज्ञवल्क्य आदि ऋषियों के अलावा जिन क्षत्रिय राजाओं ने बड़ा भाग लिया है, वे हैं कैकेयदेश के अश्वपति, पांचाल देशके प्रवाहण जैबलि, काशीके अजातशत्रु, विदेह के जनक और दक्षिण देशके वैवस्वत यम आदि. इसके आख्यानों के कुछ नमूने यहां उद्धृत किये जाते हैं.

प्रवाहण जयबलि की कथा[2]—एक बार अरुणि-गौतम ऋषि का पुत्र श्वेतकेतु पांचाल देश के क्षत्रियों की सभा में गया. तब पांचाल के राजा प्रवाहण जयबलि ने उस को कहा—हे कुमार ! क्या तुझे तेरे पिता ने शिक्षा दी है ? यह सुनकर उसने उत्तर दिया—हाँ भगवन् ! उसने मुझे शिक्षा दी है. राजा ने कहा—हे श्वेतकेतु ! जिस प्रकार मर कर प्रजाएँ परलोक को जाती हैं, क्या तू उसे जानता है ? उसने कहा—भगवन् ! मैं नहीं जानता.

राजा ने कहा—जिस प्रकार से प्रजायें पुनः जन्म लेती हैं क्या तू उसे जानता है ? उसने कहा—भगवन् ! मैं नहीं जानता. राजा ने पूछा—क्या तू देवयान और पितृयान के मार्गों की विभिन्नता को जानता है ? उसने कहा—भगवन् ! मैं नहीं जानता. उसके बाद राजा ने फिर पूछा—जिस प्रकार यह लोक और परलोक कभी जीवों से नहीं भरता, क्या तूउसे जानता है ? उससे कहा-भगवन् ! मैं नहीं जानता. राजा ने फिर पूछा—जिस प्रकार गर्भ में पुरुषाकृति बन जाती है, क्या तू उसे जानता है ? उसने कहा—भगवन् ! मैं नहीं जानता.

तदनन्तर राजा ने कहा—जो मनुष्य इन प्रश्नों का उत्तर नहीं जानता वह किस भांति अपने को सुशिक्षित कह सकता है ? इस प्रकार प्रवाहण राजा से परास्त हो वह श्वेतकेतु अपने पिता अरुणि के स्थान पर गया और कहने लगा—आपने मुझे विना शिक्षा दिये हुए ही यह कैसे कह दिया कि मुझे शिक्षा दे दी गई है ?

राजा ने मुझसे पांच प्रश्न पूछे, परन्तु मैं उनमें से एक का भी उत्तर देने में समर्थ न हो सका. तब अरुणि बोला—मैं भी इन प्रश्नों का उत्तर नहीं जानता. यदि मैं इनका उत्तर जानता होता तो तुम्हें कैसे न बताता !

१. A. Upnishads are the product of the Aryan and Drividian intermixture of Cultures.
—Keith—Religion and Philosophy of the Vedas and Upnishads. Page 447.
B. Dr. Winternitz—History of Indian Literature. Vol. I. P. 226-244.

२. छान्दोग्य उपनिषत् ५-३. बृहदारण्यक उपनिषत् ६।२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसके बाद वह अरुणि गौतम उन प्रश्नों का उत्तर जानने के लिये राजा प्रवाहण के पास गया. राजा ने उसे आसन दे पानी मंगवाया और उसका अर्घ्य किया. तत्पश्चात् राजा ने कहा—हे पूज्य गौतम ! मनुष्य योग्य धन का वर मांगो. यह सुनकर गौतम ने कहा—हे राजन् ! मनुष्य धन तेरा ही धन है, मुझे नहीं चाहिए. मुझे तो वह वार्ता बता दे जो तूने मेरे पुत्र से कही थी.

गौतम की यह प्रार्थना सुन राजा सोच में पड़ गया. सोच-विचार करने पर उसने ऋषि से कहा—यदि यही वर चाहिए तो चिरकाल तक व्रत धारण करके मेरे पास रहो. नियत साधना करने पर राजा ने उसे कहा—हे गौतम ! जिस विद्या को तू लेना चाहता हे, उसे मैं अब देने को तैयार हूं, परन्तु यह विद्या पूर्व काल में तुझ से पहले ब्राह्मणों को प्राप्त नहीं होती थी, चूंकि सारे देशों में क्षत्रियों का ही शासन था. क्षत्रिय क्षत्रियों को ही सिखाते थे.[1] यह कहकर राजा ने पांच प्रश्नों का रहस्य गौतम को बताना शुरू कर दिया. पण्डित जयचन्द विद्यालंकार और डा० पार्जीटर के कथनानुसार पांचाल नरेश प्रवाहण जैवलि-जन्मेजय के पौत्र अश्वमेध दत्त अर्थात् पाण्डवपुत्र अर्जुन की पांचवीं पीढ़ी के समकालीन था.[2] इस तरह उक्त वार्ता का समय लगभग १४ सौ ईसवी पूर्व होना चाहिए.

कैकेय अश्वपति की कथा[3]—कैकेय देश का राजा अश्वपति परीक्षित और जन्मेजय का समकालीन था. कैकेय देश (आधुनिक शाहपुर जेहलम गुजरात जिला) गान्धार से ठीक पूर्व में सटा हुआ है. कैकेय अश्वपति की कीर्ति उसकी सुन्दर राज्यव्यवस्था और उसके ज्ञान के कारण सब ओर फैली हुई थी.[4]

एक बार का कथन है कि उपमन्यु का पुत्र, प्राचीन शाल, पुलुषि का पुत्र सत्ययज्ञ, मालवी का पुत्र इन्द्रद्युमन, शर्कराक्ष का पुत्र जन और अश्वतराश्वि का पुत्र बुडिल जो बड़ी-बड़ी शालाओं के अध्यक्ष थे और महाज्ञानी थे, आपस में मिलकर विचारने लगे 'हमारा आत्मा कौन है ? ब्रह्म क्या वस्तु है?' उन्होंने निश्चय किया कि इन प्रश्नों का उत्तर वरुणवंशीय उद्दालक ऋषि ही दे सकता है, वह ही इस समय आत्मा के ज्ञान को जानता है, चलो उसके पास चलें.

उन आगन्तुकों को देख उद्दालक ऋषि ने विचार किया कि ये सभी ऋषि महाशाला वाले हैं और महाश्रोत्रिय हैं, उन को उत्तर देने के लिये मैं समर्थ नहीं हूँ. उसने कहा कि इस समय कैकेय अश्वपति ही आत्मा का सब प्रकार ज्ञाता है, आओ उसके पास चलें. वहां पहुँचने पर अश्वपति ने उनका सत्कार किया और कहा : 'मेरे देश में न कोई चोर है, न कृपण, न शराबी, न अग्निहोत्र रहित, न कोई अपढ़ है और न व्यभिचारी, व्यभिचारिणी तो होगी ही कहां से ?' आप इस पुण्य देश में ठहरें. मैं यज्ञ करने वाला हूँ. आप उसमें ऋत्विज बनें, मैं आपको बहुत दक्षिणा दूंगा. उन्होंने कहा—हम आपसे दक्षिणा लेने नहीं आये हैं, हम तो आपसे आत्मज्ञान लेने आये हैं. अश्वपति ने उन्हें अगले दिन सवेरे उपदेश देने का वायदा किया. अगले दिन प्रातःकाल वे समिधाएँ हाथों में लिये उसके पास पहुँचे और अश्वपति ने उन्हें आत्मज्ञान दिया.

अजातशत्रु की कथा[5]—काशीनरेश अजातशत्रु, विदेह के राजा जनक उग्रसेन तथा कुरुराज जनमेजय के पुत्र शतानीक का समकालीन था. वह अपने समय का एक माना हुआ आत्मज्ञानी था और ज्ञान की चर्चा में अभिरुचि रखने वाले विद्वानों का भक्त था. एक बार आत्मविद्याभिमानी गर्गगोत्रीय दृप्त बालाकि नाम वाला ब्राह्मण ऋषि उशीनर (बहावल पुर का प्रदेश) मत्स्य (जयपुर राज्य) कुरु (मेरठ जिला) पांचाल, (रुहेलखण्ड, आगरा का इलाका) काशी, विदेह,

---

१. 'सह कृच्छ्री बभूव. तं ह चिरं वसेत्याज्ञापयांचकार. तं हो वाचयथा मां त्वं गौतमावदो यथेयं न प्राक् त्वत: पुरा विद्या ब्राह्मणान् गच्छति. तस्मात् सर्वेषु लोकेषु क्षत्रस्यैव प्रशासनमभूदिति. —छां० उप० ५-३-७.

२. भारतीय इतिहास की रूपरेखा—जिल्द प्रथम, पृष्ठ २८६.

३. छा० उप० ५-११, १२. महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ७७.

४. भारतीय इतिहास की रूपरेखा. जिल्द प्रथम. पृ० २८६.

५. (अ) बृहदारण्यक उपनिषत् २, १. (आ) कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषत् अध्याय ४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(तिरहुत, विहार) में से घूमता हुआ काशीराज अजातशत्रु के पास आत्मचर्चा के लिये पहुँचा और कहने लगा कि मैं तुझे ब्रह्म की बात बताऊँगा. अजातशत्रु ने कहा कि यदि तुम ब्रह्म की व्याख्या कर पाओगे तो मैं तुम्हें एक हजार गायें दक्षिणा में दूंगा. गार्ग्य ने व्याख्या करनी चाही परन्तु वह सफल न हुआ. उसका आज तक का शिक्षण आधिदैविक परम्परा में हुआ था. अतः स्वभावतः उसकी दृष्टि बाह्यमुखी थी. उसने बाह्य के महिमावान पदार्थों में ब्रह्म का साक्षात्कार करते हुए कहा—'यह जो सूर्यमण्डल में पुरुष है, यह जो चन्द्रमण्डल में पुरुष है, यह जो विद्युन्मण्डल में पुरुष है, यह जो मेघमण्डल में पुरुष है, यह जो आकाशमण्डल में पुरुष है, यह जो वायुमण्डल में पुरुष है, यह जो अग्निमण्डल में पुरुष है, यह जो जनमण्डल में पुरुष है, यह जो दर्पण में पुरुष है, यह जो प्रतिध्वनि में पुरुष है, यह जो छाया में पुरुष है, इसी की मैं ब्रह्मरूप से उपासना करता हूं. यह जो शरीर है, यह जो प्रज्ञा है, यह जो दाहिने नेत्र में पुरुष है, यह जो बायें नेत्र में पुरुष है, इसी की मैं ब्रह्मरूप से उपासना करता हूं.' इतना कुछ कहने पर अजातशत्रु ने कहा कि क्या इतना ही तेरा ब्रह्मज्ञान है ? इस पर गार्ग्य ने कहा—'हां इतना ही.' तब अजातशत्रु ने कहा कि तू वृथा ही मुझ से ब्रह्म का संवाद करने आया है, इनमें से कोई भी ब्रह्म नहीं है. ये सब तो उसके कर्म मात्र हैं. इनका जो कर्ता है वह जानने योग्य है. तदनन्तर हाथ में समिधा ले उसके पास जाकर बोला—'मैं तेरे पास शिष्य भाव से आया हूं, तू मुझे आत्मविद्या का उपदेश दे' तब अजातशत्रु ने उसे बताया कि जैसे क्षुरधान में क्षुर, काष्ठ में अग्नि सर्वत्र व्याप्त है, ऐसे ही शरीर में नख से शिखा तक आत्मा व्याप्त है. उस साक्षी आत्मा का ये वाक्, मन, नेत्र, कर्ण आदि सभी इन्द्रियां अनुगत सेवक की तरह अनुसरण करती हैं. जैसे एक धनी पुरुष का उसके आश्रित रहने वाले स्वजन अनुवर्तन करते हैं. सोते समय ये सभी शक्तियां आत्मा में लीन हो जाती हैं और उसके जागने पर अग्नि में से निकलने वाली चिनगारियों के समान ये समस्त शक्तियां निकल कर अपने-अपने काम में लग जाती हैं.

सनत्कुमार की कथा[1]—एक समय नारद महात्मा ने सनत्कुमार के पास जाकर कहा—'हे भगवन् ! मुझे ब्रह्मविद्या पढ़ाइये.' सनत्कुमार ने उसको कहा—'पहले जो कुछ तू जानता है, मेरे समीप बैठकर मुझे सुनादे. उसके बाद मैं तुझे बताऊंगा.' नारद ने कहा—'भगवन् ! मैं ऋग्वेद को जानता हूं, यजुर्वेद को, सामवेद को, चौथे अथर्ववेद को, पांचवें इतिहास-पुराण को, वेदों के वेद व्याकरण को, पितृविज्ञान को, गणित शास्त्र को, भाग्यविज्ञान को, निधिज्ञान को, तर्कशास्त्र को, नीतिशास्त्र को, देवविद्या को, भक्तिशास्त्र को, भूतविद्या को, धनुर्विद्या को, ज्योतिष, सर्पविद्या, संगीत, नृत्य-विद्या को जानता हूं. हे भगवन् ! इन समस्त विद्याओं से सम्पन्न मैं मन्त्रवित् ही हूं परन्तु आत्मा का ज्ञाता नहीं हूं. मैंने आप जैसे महापुरुषों से सुना है कि जो आत्मवित् होता है वह जन्म-मरण के शोक को तर जाता है, परन्तु भगवन् ! मैं अभी तक शोक में डूबा हुआ हूं. मुझे शोक से पार कर देवें.' सनत्कुमार ने नारद से कहा—'तुमने आजतक जो कुछ अध्ययन किया है वह नाम मात्र ही है. इसके उपरान्त सनत्कुमार ने आत्मविद्या देकर नारद को सन्तुष्ट किया.

वैवस्वत यम और नचिकेता की गाथा—कठ उपनिषत् में औद्दालिक आरुणि गौतम के पुत्र नचिकेता ऋषि की एक कथा दी हुई है. एक बार नचिकेता, जो जन्म से ही बड़ा त्यागी और विचारशील था, अपने पिता के संकुचित व्यवहार से रूठ कर भाग गया. वह शान्तिलाभ के लिये वैवस्वत यम के घर पहुंचा, पर उस समय वैवस्वत बाहर गया हुआ था. उसके बाहर जाने के कारण नचिकेता को तीन रात भूखा रहना पड़ा. वापिस आने पर घर में भूखे अतिथि को देखकर यम को बड़ा खेद हुआ. अपने दोष की निवृत्ति यम ने नचिकेता को तीन रात के कष्ट के बदले तीन वर मांगने के लिये कहा. नचिकेता के माँगे हुये पहले दो वर यम ने उसे तुरन्त ही दिये. फिर नचिकेता ने तीसरा वर इस प्रकार मांगा—'यह जो मरने के बाद मनुष्य के विषय में सन्देह है—कोई कहते हैं कि रहता है, कोई कोई कहते हैं कि नहीं रहता, यह आप मुझे समझादें कि असल बात क्या है ? यही मेरा तीसरा वर है.

इस वर को सुनकर यम बोला–'इस विषय में तो पुराने देवजन अर्थात् विप्रजन भी सन्देह करते रहे हैं. इसका जानना

१. छांदोग्य उपनिषद्, सातवां प्रपाठक पहला खण्ड.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुगम नहीं है. यह विषय बहुत सूक्ष्म है. नचिकेता ! तुम कोई दूसरा वर मांग लो, इसे छोड़ दो, मुझे बहुत विवश न करो.'

इस पर नचिकेता ने कहा—'निश्चय से ही यदि देवों ने भी इसमें सन्देह किया है और आप स्वयं भी इसे सुगम नहीं कहते तो आप जैसा इसका वक्ता दूसरा कौन मिल सकता है, इसके समान दूसरा वर भी क्या हो सकता है ?'

यम ने परीक्षार्थ यह जानने के लिये कि नचिकेता आत्मज्ञान का अधिकारी है या नहीं, उसे बहुत से प्रलोभन दिये. हे नचिकेता! तू सौ वर्ष की आयु वाले पुत्र और पौत्र माँग. बहुत से पशु, हाथी, घोड़े और सोना मांग, भूमि का बहुत बड़ा भाग मांग और जबतक तू जीना चाहे उतनी आयु का वर मांग. तू इस विशाल भूमि का राजा बन जा. जो भी कामनायें तू इस लोक में दुर्लभ समझ रहा है वे सभी जी खोलकर तू मुझ से मांग. रथों और बाजों सहित ये अलभ्य रमणियां तेरी सेवा के लिये देता हूं. इन सभी वस्तुओं को ले ले, परन्तु हे नचिकेता ! मरने के अनन्तर की बात मुझ से न पूछ.'

पर नचिकेता इन प्रलोभनों से तनिक भी भ्रम में न पड़ा. वह बोला—'हे यम ! ये सब उपभोग के सामान दो दिन के हैं, ये सब इन्द्रियों का तेज नष्ट करने वाले हैं. जीवन अल्पकाल तक ही रहने वाला है. इसलिये ये सब नाच-गान, हाथी-घोड़े मुझे नहीं चाहिए, धन से कभी तृप्ति नहीं होती. मुझे तो वही वर चाहिए.' नचिकेता की इस सच्ची लगन को देख यम विवश हो गया. उसने अन्त में जन्म-मरण सम्बन्धी आत्मज्ञान दे नचिकेता के छटपटाये हुए दिल को शान्ति दी.

उपरोक्त कथा में जिस नचिकेता का उल्लेख है वह कठ जाति का ब्राह्मण मालूम होता है. प्राचीन काल में यह जाति पंजाब के उत्तर की ओर रावी नदी से पूर्व वाले देश में, जिसे आजकल मांझा (लाहौर, अमृतसर वाला देश) कहते हैं, रहा करती थी. इसी कारण इस देश का पुराना नाम कठ है.[1] उपर्युक्त कथा के समय यह जाति मध्यदेश अर्थात् आर्यखण्ड में बसी हुई थी.

यम और यमलोक—वैवस्वत यम, जिसके पास नचिकेता ज्ञान-प्राप्ति के लिये गया था, उस मगध देशवासी सूर्यवंशी यम शाखा का एक क्षत्रिय राजा मालूम होता है, जिसने मध्यदेश के दक्षिण की ओर एक स्वतन्त्र जनपद कायम कर लिया था. जैन परम्परा के अनुसार इस शाखा का मूल संस्थापक आदि ब्रह्मा वृषभ अपर नाम विवस्वत मनु का पुत्र बाहुबली था. आदि ब्रह्मा ने प्रव्रज्या लेने से पहले भारतभूमि का बंटवारा कर उत्तर भारत का राज्य अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को और दक्षिण का भाग बाहुबली को दे दिया था. बाहुबली ने दक्षिण के अशमक (कर्णाटक) देश के पोदनपुर स्थान पर अपनी राजधानी बसा ली थी.[2] बाहुबली पीछे से राज्य छोड़ त्यागी तपस्वी हो गया था और उसने एक साल पर्यन्त कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े रहकर मन वचन काय तथा समस्त इन्द्रियों के यमन द्वारा ऐसी घोर तपस्या की थी कि उसे देख कर देव, असुर, मनुष्य सभी लोग चकित हो गये थे. उस तपस्या के द्वारा उसने यम व मृत्यु का सदा के लिये अन्त कर दिया था. वह मृत्यु की मृत्यु बन गया था.[3] इसलिये वह लोक में यम नाम से प्रसिद्ध हुआ और पीछे से इस शाखा के राजा यम व जम के ही नाम से पुकारे जाने लगे. इस तरह यह उनकी एक परम्परागत उपाधि बन गई और कर्णाटक देश यमलोक के नामसे प्रसिद्ध हुआ. इसीलिए भारतीय अनुश्रुति में दक्षिण का अधिष्ठाता देवता यम कहा गया है,[4] यम पीछे

---

१. जयचन्द विद्यालंकार—भारतीय इतिहास की रूपरेखा प्रथम जिल्द पृ० २९०.

२. (क) विन्ध्यगिरि पर्वत का शिलालेख—लगभग शक सं० ११०२ वाला जैन शिलाशेख संग्रह प्रथम भाग पृ० १६९-१७५.

(ख) नव सदी का श्रीगुणभद्राचार्य विरचित उत्तरपुराण.

(ग) छठी सदी के पूज्यपाद स्वामी ने अपने निर्वाण भक्ति ग्रन्थ में विन्ध्यगिरि के पोदनपुर नगर का सिद्धतीर्थ के रूप में उल्लेख किया है.

(घ) वि० सं० १२८५ का श्रीमदनकीर्ति यति द्वारा रचित शासनचतुर्विंशिका ।२।

३. अथर्ववेद ८. १०, ४. ६, में यम को मृत्यु का आदि अन्तक कहा गया है और उसे पितरों में सबसे प्रमुख पित्र बताया गया है. उसका स्वधा शब्द पूर्वक श्राद्ध करने को कहा गया है.

४. बृहदारण्यक उपनिषत् ३. ९, २१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से किसी विशेष व्यक्ति का नाम न रहकर उस शाखा के राजाओं की उपाधि बन गई थी. सूर्यवंशी क्षत्रियों की यह यम शाखा अपनी दान-दक्षिणा, न्यायशीलता और ज्ञानचर्चा के लिये बहुत प्रसिद्ध थी. इसी कारण इस शाखा का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण १३, ४, ३, ६.[१] और ऋग्वेद के दसवें मण्डल के दसवें सूक्त तथा अथर्व १८ काण्ड के पहले सूक्त में भी भी मिलता है. उक्त उल्लेखों से यम लोगों की ज्ञानलिप्सा व सभ्यता का पर्याप्त परिचय प्राप्त होता है. ईरान की धर्म-पुस्तक छन्द-अवस्ता (Zend Avesta) में यम को मित्र कहा गया है तथा यम को प्रथम राजा एवं धर्म और सभ्यता का संस्थापक बतलाया गया है. वहां यह भी उल्लिखित है कि सदाचारी लोग मित्र के साथ अहुरमजद (असुरमहत-वृषभ) का भी दर्शन करते हैं. वैदिक साहित्य के अनुरूप ही छन्द अवस्त में यम के पिता का नाम वियस्वत (विस्वत) दिया हुआ है और यमपुरी को धर्मात्मा लोगों की निवासभूमि बतलाया गया है.

अध्यात्मविद्या की शिक्षा-दीक्षा पद्धति—उल्लिखित आख्यानों से यह स्पष्ट है कि भारत में अध्यात्म विद्या के वास्तविक जानकार क्षत्रिय लोग थे. परम्परा से उन्हीं लोगों में अध्यात्म तत्त्वों का मनन होता चला आ रहा था और उन्हीं के महापुरुष घर-बार छोड़ भिक्षु बन जंगलों में रहते हुए तप ध्यान श्रद्धा द्वारा आत्म-साधना किया करते थे.[२] उन्होंने यह विद्या उस समय तक ब्राह्मण लोगों को न दी जब तक उन्हें परीक्षा करके यह विश्वास न हो गया कि वे (ब्राह्मण) लोग शुद्ध बुद्धि नम्रभाव एवं शिष्य वृत्ति से इसे ग्रहण करने के लिये उत्सुक हैं.

अध्यात्मबोध पाने के लिये परिग्रह से विरक्ति और मन वचन काय की शुद्धि की आवश्यकता होती है। इसी साधना के अर्थ पातंजलयोग दर्शन में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि रूप अष्टांग मार्ग की व्याख्या की गई है.

अध्यात्मविद्या अनधिकारी के हाथों में पड़कर दूषित न हो जाय.[३] इस विचार से अध्यात्मवादी क्षत्रियों का सदा यह नियम रहा है कि यह विद्या श्रद्धालु और शान्तचित शिष्यों के सिवाय किसी और को न दी जाय, चाहे वह सागर से घिरी धनपूर्ण सम्पूर्ण पृथ्वी भी पुरस्कार में देने को तैयार हो.[४] इसी कारण उपनिषदों में अध्यात्मविद्या को रहस्य-विद्या व गुह्यविद्या कहा गया है. स्वयं उपनिषत् (उप+निषत्) शब्द का अर्थ है पूज्य पुरुषों के चरणों में रह कर उनके सान्निध्य से प्राप्त होने वाली विद्या, अर्थात् वह रहस्य विद्या जो गुरु के निकट रह कर साक्षात् उनकी वाणी और जीवन से ग्रहण की जाती है. इस प्रकार विनीत, श्रद्धालु और अन्तेवासी शिष्यों को एकान्त में मौखिक रूप से आध्यात्मिक शिक्षा देने की प्रथा केवल उपनिषत्काल में ही प्रचलित न थी, बल्कि यह प्रथा भारत के शैव, शाक्त, जैन, बौद्ध आदि अध्यात्मवादी लोगों में आज तक भी प्रचलित है. इसी प्रथा का फल है कि आज से पचास वर्ष पहले

---

१. यमो वैवस्वतो राजेन्याह० शत—ब्रा० १३, ४, ३, ६ अर्थात् विवस्क्त के पुत्र यम राजा ने कहा है.

२. तपः श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरन्तः ।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा । मुण्डक उप० १, २, ११ ।

३. बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो, मामयं प्रहरिष्यति—महाभारत, आदिपर्व १—२६७ ; अर्थात् वेद अल्पश्रुत से डरता है कि कहीं यह मुझे बिगाड़ न दे.

४. (अ) वेदान्ते परमं गुह्यं, पुराकाले प्रचोदितम् ।
नाप्रशान्ताय दातव्यं नापुत्राय शिष्याय वा पुनः ।
यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ।। श्वेताश्वतर उप० ६– २२–२३.
(आ) इदं वाव तज्ज्येष्ठाय पुत्राय पिता ब्रह्म प्रब्रूयात्, प्रणाय्याय वान्तेवासिने । नान्यस्मै कस्मैचन, यद्यप्यस्मा इमामद्भिः परिगृहीतां धनस्य पूर्णां दद्यात्, एतदेव ततो भूय इत्येतदेव ततो भूय इति—छान्दोग्य उप० ३–११–५–६.
(इ) मुण्डक उपनिषद्—३, २, १० । १, २, १३ .
(ई) यास्काचार्यकृत निरुक्त २–१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तक अविनय के भय से जैन विद्वानों को अपना साहित्य दूसरों को दिखाना या उसे मुद्रित कराना तक भी सह्य न था. इसी कारण जैन साहित्य का परिचय बाहर के विद्वानों को आज तक बहुत कम हो पाया है.

प्रश्न हो सकता है कि ये जिज्ञासु ब्राह्मण विद्वान ब्रह्मविद्या सीखने के लिये उन वनवासी त्यागी तपस्वी यतियों के पास क्यों नहीं गये जो साक्षात् धर्ममूर्ति और ब्रह्मविद्या की निधि थे ? उन्हें छोड़ कर वे गृहस्थ क्षत्रिय राजाओं के पास क्यों गये ? इसका उत्तर सम्भवतः यही हो सकता है कि ब्राह्मण जन उस समय ब्रह्मविद्या की खोज में न केवल अध्यात्मधनी क्षत्रिय कुलों में प्रत्युत यतियों के पास भी पहुंच रहे थे, परन्तु जो जिज्ञासु यतियों के सम्पर्क में आये, वे ब्रह्मविद्या के ज्ञानमात्र से सन्तुष्ट न होकर स्वयं यतियों के समान आत्मसाधना में लग गये. उन्होंने ब्रह्मविद्या के तत्त्वों को संकलन करने और साहित्यिक रूप में पेश करने का कोई यत्न नहीं किया. केवल वे विद्वान् ही जो क्षत्रिय-घरानों से ब्रह्मविद्या ग्रहण करने के बाद भी गृहस्थ जीवन बिताते रहे, इन तत्त्वों को आख्यानों के रूप में सुरक्षित रखने का परिश्रम करते रहे. इस कारण उपनिषदों में उनके आख्यान आज भी उपलब्ध हैं.

लिपिबोध और लिखित साहित्य—सिन्ध और पंजाब के मोहनजोदड़ो और हड़प्पा आदि पुराने नगरों के खंडहरों से प्राप्त मोहरों के अभिलेखों से यह सिद्ध है कि भारतीय लोग ईसा पूर्व ३००० वर्ष से भी पहले लिपिविद्या और लेखन-कला से भलीभांति परिचित थे, परन्तु जैसा कि अन्य प्रमाणों से सिद्ध है, वे इस लेखनकला का प्रयोग आध्यात्मिक तत्त्वों तथा पौराणिक गाथाओं के संकलन के हेतु न करके केवल मुद्रांकन व लौकिक व्यवसाय के लिये ही करते थे.[1] अध्यात्मविद्या के प्रचार और प्रसार के लिये वे मौखिक शब्दों से ही काम लेते थे और शिष्य-प्रशिष्य परम्परा से ही वह मौखिक ज्ञान अग्रसर होता जाता था.

इसीलिए उस काल में विविध विद्याओं तथा धार्मिक और पौराणिक तथ्यों का बोध श्रुति व श्रुतज्ञान के नाम से प्रसिद्ध था. अथवा गुरु-शिष्य परम्परा से विद्याओं के पदों को बार-बार घोख कर जबानी याद रखा जाता था. इसलिए अभ्यास द्वारा जबानी याद रखी हुई विद्या को आम्नाय कहा जाता था. प्राचीन भारतीय साहित्य में धर्मशिक्षण सम्बन्धी ग्रंथलेखन व पठन का कोई उल्लेख नहीं मिलता—केवल प्रवचन और श्रवण का ही उल्लेख मिलता है. (कठ० उप० २–२–२३) जो श्रोता संतों की संगत में रहकर प्रवचन सुनने में प्रर्याप्त समय बिताते थे, वे दीर्घश्रुत व बहु-श्रुत कहलाते थे. (छांदो० १०–७–३२) दूसरी ईस्वी सदी के प्रसिद्ध जैन ग्रंथ तत्त्वार्थ सूत्र ९–२५ तक में स्वाध्याय के अंगों का वर्णन करते हुए वाचना पृच्छा, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेश का वर्णन किया गया है, पठन का नहीं. जैसा कि यूनानी दूत मैगास्थनीज के वृत्तान्तों से विदित है, ईसा से ३०० वर्ष पूर्व मौर्य शासनकाल तक भारतीय लोगों के पास अपने कोई लिखे कानून तक मौजूद न थे.[2] इसी तरह बौद्ध आचार्यों ने यद्यपि अपने आगमसाहित्य को २४० ईसा पूर्व में संकलित कर लिया था परन्तु इस समय के बहुत बाद तक भी वे लिखित साहित्य का सृजन न कर सके. भारत में सबसे पुराने धार्मिक अभिलेख, जो आज तक उपलब्ध हो पाये हैं वे हैं जो अशोक की धर्मलिपि के नाम से प्रसिद्ध हैं. ये सम्राट् अशोक ने[3] अपने शासन काल में तीसरी सदी ईस्वी पूर्व स्तम्भों व शिला-खण्डों पर अंकित कराये थे. लिखित साहित्य के अभाव के कई कारण हो सकते हैं. एक तो योग्य लेखन सामग्री और खासकर कागज का अभाव, दूसरे विद्वानों की महत्त्वाकांक्षा और संकीर्णता कि कहीं दूसरे भी पढ़ लिख कर उन जैसे विद्वान् न बन जावें. तीसरे शिक्षा-दीक्षा की प्राचीन पद्धति. ऊपर वाले कारणों में से तीसरा कारण ही इस अभाव का प्रमुख कारण माना जाता है. शिक्षा-दीक्षा की इस प्राचीन पद्धति के कारण ही भारत के तत्त्ववेत्ता क्षत्रिय विद्वानों ने लिखित रचनायें करने का प्रयास नहीं किया. अध्यात्मविद्या ही क्या, इतिहासविद्या, पुराणविद्या, सर्पविद्या, पिशाचविद्या, असुरविद्या, विश्वविद्या, अंगिरसविद्या, भूतविद्य, पितृविज्ञान, ब्रह्मविद्या, शब्दोच्चारण विद्या, गाथा आदि भारत की अनेक पुरानी विद्याओं का

१. Dr. winternitiz—History of Indian Literature Vol. I, Introduction. pp. 31-40.
२. Ancient India as described by Megsthnees—by Macrindle, 1877, p. 69.
३. कुछ विद्वानों का यह मत है कि ये समस्त अभिलेख अशोक के नहीं बल्कि इनमें कुछ उसके पौत्र सम्राट् सम्प्रति के हैं.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी, जिनका नाम मात्र प्रसंगवश वैदिक वाङ्मय[1] में मिलता है और जिनका सविस्तार निर्देश जैन वाङ्मय[2] के १४ पूर्वों के कथन में दिया हुआ है, कोई लिखित साहित्य मौजूद नहीं है.

श्रुति (श्रुति ज्ञान) की परम्परा वैदिक सूक्तों से भी अति प्राचीन है—वैदिक परम्परा में साधारणतया वेदसंहिताओं, ब्राह्म आरण्यक और उपनिषदों को श्रुति की संज्ञा दी जाती है और तदुपरान्त शेष हिन्दु साहित्य को, जिसमें श्रौत्र सूत्र, ग्रह्य सूत्र, कल्पसूत्र, स्मृतिग्रंथ आदि सम्मिलित हैं, उन सभी को स्मृति की संज्ञा दी जाती है, परन्तु वास्तव में इनमें से कोई भी रचना 'श्रुति' कहलाने की अधिकारी नहीं है. भारत की सभी प्राचीन वैदिक तथा श्रमण अनुश्रुतियों के अनुसार भारतीय जन की सदा ही यह अटूट धारणा रही है कि सभी ज्ञान विज्ञान और कला सम्बन्धी विद्याओं का मूल स्रोत आदि ब्रह्मा, आदिपुरुष, आदि प्रजापति स्वयंभू ब्रह्मा हैं. आदि ब्रह्मा के जिन शिष्यों प्रशिष्यों की प्रणाली द्वारा ये विद्यायें हम तक पहुंची हैं उनके अनुवंशों का उल्लेख तत्-तत् विद्या सम्बन्धी सभी प्राचीन रचनाओं में भिन्न-भिन्न ढंग से किया गया है[3] इन रचनाओं के अतिरिक्त आदि ब्रह्मा की वाणी के द्वारा कथित जीवन-जगत सम्बन्धी अनेक तात्त्विक, धार्मिक, पौराणिक, और ऐतिहासिक तथ्य जो वैदिक आर्यजनों के आगमन के पूर्व यहाँ के दस्युजनों को प्राप्त थे जिन्हें वे स्वयम्भू-कथित होने से श्रद्धेय मान कर कंठस्थ किये हुये थे, कालप्रवाह में बहते-बहते सन्तति-प्रसन्तति क्रम से आये मनीषियों को भी सुनने को मिले हों. वेद सूक्तों के निर्माता ऋषियों ने अपने सूक्तों में गूंथे हुए तथ्यों की प्रामाणिकता-पुष्टि में स्थान-स्थान पर इन श्रुतियों की ओर संकेत करते हुए 'श्रूयते श्रुतम्' आदि शब्दों का प्रयोग किया है.

इन उदाहरणों से पता लगता है कि श्रुतिज्ञान वेदसंहिताओं में संकलित सूत्रों से भी प्राचीन है. ये श्रुतियाँ आप्त-वचन होने के कारण तत्त्वतः प्रमाण मानी जाती रही हैं. और इन श्रुतियों पर आधारित होने के कारण वेद-सूक्तों को भी श्रुति कहा जाने लगा है.

ब्राह्मणों का श्रेय—इस अभाव पर से कुछ विद्वानों ने यह मत निर्धारित कर लिया है कि औपनिषदिक काल से पहले भारतीय लोगों को आत्मविद्या का कोई बोध न था. भारत में अध्यात्मविद्या का जन्म उपनिषदों की रचना के साथ-साथ या उससे कुछ पहले से हुआ है. उनका यह मत कितना भ्रमपूर्ण है यह ऊपर वाले विवेचन से भलीभांति सिद्ध है. औपनिषदिक काल आत्मविद्या का जन्मकाल नहीं है. आत्मविद्या तो वैदिक आर्यगण के आने से भी बहुत पहले बल्कि यों कहिए कि सिन्ध घाटी की ३००० वर्ष ईसा पूर्व मोहनजोदड़ोकालीन आध्यात्मिक में संस्कृति से भी पहले यहाँ के व्रात्य यति, श्रमण, जिन, अतिथि, हंस आदि कहलाने वाले योगी जनों के जीवन प्रवृत्त में हो रही थी. औपनिषदिक काल तो उस युग का स्मारक है जब ब्राह्मण विद्वानों की निष्ठा वैदिक त्रिविद्या (ऋक्, यजुः साम) से उठकर आत्मविद्या की

---

१. अथर्व वेद १५-१ (६) ७-१२. गोपथब्राह्मण पर्व १-१०. शतपथ ब्रा० १४-५-४-१०. बृहदारण्यक उप० २. ४, १०. छान्दोग्य ७, १, २. शांखायन श्रौत सूत्र १६.२. आश्वलायन श्रौत सूत्र १०, ७. अथर्व वेद ११-७-२४ शतपथ ब्रा० १३-४-३. ३-१४.

२. (अ) षट्खण्डागम–धवला टीका जिल्द १ अमरावती सन् १९३९ पृ० १०७ १२४ (आ) समवायांग सूत्र. (इ) स्थानांग (ई) नन्दीसूत्र (उ) पाक्षिक सूत्र (ऊ) आठवीं सदी के श्रीजिनसेनाचार्यकृत हरिवंशपुराण १० ११-१४३, (ए) आठवीं सदी के स्वामी जिनसेन कृत महापुराण २–१९८-११३-३४, १३५-१४७.
(ऐ) अंगपण्णत्ति–शुभचन्द्राचार्य कृत (ओ) तत्त्वार्थसारदीपिका-भट्टारक सकलकीर्तिकृत

३. (क) ऋग्वेद १०-९०-९.
(ख) शतपथ ब्राह्मण अन्तर्गत वंश ब्राह्मण १४-९-४, १४, ५, १९-२२.
(घ) बृहदारण्यक उपनिषद् २, ६, ६, ५.
(ङ) छान्दोग्य उपनिषद् ३, ५१, ४, ८, १५, १.
(च) मुण्डक उप० १, १-२; २, १, ६.
(छ) महा शान्ति पर्व ३४९, ५१-५३ भगवद्गीता ४, १-२.
(ज) चरक संहिता-सूत्र स्थान, प्रथम अध्याय.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओर झुकी और आत्मविद्या क्षत्रियों की सीमा से निकल कर ब्राह्मणों में फैलनी शुरू हुई. इस दिशा में ब्राह्मण ऋषियों का श्रेय इस बात में है कि उन्होंने सबसे पहले भारत के आध्यात्मिक दर्शन और उनके पौराणिक आख्यानों को उपनिषदों, ब्रह्मसूत्र, भिक्षुसूत्र, योगदर्शन व पुराणों की शकल में संकलित व लिपिबद्ध करने का परिश्रम किया. यदि इन के द्वारा संकलित की हुई अध्यात्मचर्चाएं आज हमारे पास न होती तो बुद्ध और महावीर काल से पहले की आध्यात्मिक संस्कृति का साहित्यिक प्रमाण ढूंढना हमारे लिये असम्भव था. जैन परम्परागत जो लिखित साहित्य आज उपलब्ध है उसका आरम्भ महावीरनिर्वाण के ५०० वर्ष बाद ईसा पूर्व की पहली सदी में उस समय हुआ जब जैन आचार्यों को यह अच्छी तरह विदित हो गया कि अध्यात्मतत्त्व बोध दिनों दिन घटता जा रहा है और यदि इसे लिपिबद्ध न किया गया तो रहा सहा बोध भी लुप्त हो जायगा,[1]

अध्यात्मविद्या सभी लोगों में रहस्य विद्या बनकर रही है :—भारत के सभी धर्मशास्त्रों में जगह-जगह अधिकारी और अनधिकारी श्रोताओं के लक्षण देते हुए बतलाया गया है कि अध्यात्मविद्या का बखान उन्हीं को किया जाय जो जितेन्द्रिय और प्रशान्त हों, हंस के समान शुद्ध वृत्ति वाले हों, जो दोषों को टालकर केवल गुणों को ग्रहण करने वाले हों.[2]

अध्यात्मविद्या को इस प्रकार अनधिकारी लोगों से सुरक्षित रखने का विधान केवल भारत के सन्तों तक ही सीमित नहीं रहा है. भारत के अलावा जिन अन्य देशों में आध्यात्मिक तत्त्वों का प्रसार हुआ है, वहाँ के आध्यात्मिक सन्तों ने भी इस विद्या को अनधिकारी लोगों से बचा रखने का भरसक यत्न किया है। आज से लगभग २००० वर्ष पूर्व जब पश्चमी एशिया के यहूदी लोगों में प्रभु ईसा ने आध्यात्मिक तत्त्वों की विवेचना शुरू की तो बहुत विवेक और सावधानी से (parablas) रूपकों द्वारा ही की थी.[3] इस लिये कि कहीं वे अपनी नासमझी से इन तत्त्वों को बिगाड़कर कुछ का कुछ अर्थ न लगा बैठें और फिर विरोध पर उतारू हो जायें. इसीलिए प्रभु ईसा ने इस बात को कई स्थलों पर दोहराया है—जो बहुमूल्य और पवित्र तत्त्व हैं उन्हें श्वान और वराहवृत्ति वाले लोगों के सामने न रखा जाय, कहीं वे उन्हें पावों से रौंद कर तुम्हें ही आघात पहुँचाने को उद्यत न हो जाएँ.[4]

---

१. षट्खण्डागम भाग १—डा० हीरालाल द्वारा लिखित प्रस्तावना.

२. (अ) महाभारत शान्तिपर्व अध्याय २४६.

(आ) षट्खण्डागम, धवला टीका, जिल्द १ गाथा ६२-६३.

३. (A) But without a parable spake he not unto them and when they were alone, he expounded all things to his desciples. Bible—Mark IX 34.

(B) I will open my mouth in parbles. I will utter things which have been kept secret from the foundations of the world. Bible-Matthew XIII 35

४. (A) It is not meet to take the children's bread and to cast it unto the dogs. Bible. Mark VII. 27

(B) Give not that which is holy unto the dogs, neither cast your pearls before swine. Lest they trample them under their feet and turn again and rend you. Bible Matthew VII 6.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org